बच्चों को प्रश्न पूछने से रोकिए !

सुन्दर नौटियाल

आमतौर पर कक्षा में उन्हीं बच्चों को अच्छा माना जाता है जो बिना कुछ पूछे-कहे शिक्षक के निर्देशों का पालन करते हैं। बच्चों को प्रश्न करने की आज़ादी उनके अध्यापक से जुड़ने, सहज होने और सीखने के मौक़ों का तो विस्तार करती ही है, साथ ही अध्यापक को भी अपने ज्ञान को विस्तार देने के लिए प्रेरित करती है। लेखक का कहना है कि चुनना आपको ही है : आप एक रूढ़िबद्ध शिक्षक की तरह साल-दर-साल एक ही पुस्तक को पढ़ाते हुए अपनी शिक्षकीय यात्रा को बस पूरा कर लेना चाहते हैं या आप इस यात्रा का मज़ा लेना चाहते हैं, उसके हर पल को जीना चाहते हैं? सं.

आप सोच रहे होंगे कि मैं कैसा अध्यापक हूँ? यह कैसा बेतुका तर्क है। जहाँ पूरी शिक्षा व्यवस्था तर्क करने, प्रश्न करने, समस्या के समाधान के लिए बच्चों को प्रेरित करने की बात करती है, वहीं मैं...? ज़रा ध्यान से पढ़िएगा कि आख़िर बच्चों के प्रश्न करने से क्या हर्ज है— हम शिक्षकों का?

अपने विद्यालयी जीवन से ही मैं जिज्ञासु प्रवृत्ति का रहा हूँ, परन्तु प्रश्नकर्ता नहीं रहा। शायद ऐसा माहौल ही नहीं मिला जहाँ प्रश्न करने को प्रोत्साहन मिले। शिक्षक बनने की प्रक्रिया में कहीं से 'अब्राहम लिंकन का पत्र अपने पुत्र के शिक्षक के नाम'* पढ़ लिया। पत्र के कुछ अंश देखिए तो सही—

प्रिय गुरुजी,

मैं अपने पुत्र को शिक्षा के लिए आपके हाथों सौंप रहा हूँ। आपसे मेरी अपेक्षा यह है कि इसे ऐसी शिक्षा दें जिससे वह सच्चा इंसान बन सके।

...उसे हारना सिखाएँ और जीत में ख़ुश होना भी सिखाएँ, हो सके तो उसे राग-द्वेष से दूर रखें और उसे अपनी मुसीबतों को हँसकर टालना सिखाएँ।

...अगर सम्भव हो तो उसे किताबों की मनमोहक दुनिया में अवश्य ले जाएँ, साथ-साथ उसे प्रकृति की सुन्दरता, नीले आसमान पर उड़ते आज़ाद पक्षी, सुनहरी धुप में गुनगुनाती मधुमक्खियाँ और पहाड़ के ढलानों पर खिलखिलाते जंगली फूलों की हँसी को भी निहारने दें।

चाहे सभी लोग उसे ग़लत कहें, परन्तु वह अपने विचारों में पक्का विश्वास रखे और उन पर अडिग रहे...।

जब सब लोग भेड़ों की तरह एक ही रास्ते पर चल रहे हों, तो उसमें भीड़ से अलग होकर अपना रास्ता बनाने की हिम्मत हो।

उसे सिखाएँ कि वह हरेक बात को धैर्यपूर्वक सुने, फिर उसे सत्य की कसौटी पर कसे, और केवल अच्छाई को ही ग्रहण करे।

* 'अब्राहम लिंकन का पत्र अपने पुत्र के शिक्षक के नाम' शीर्षक से यह रचना विगत लम्बे समय से इण्टरनैट की दुनिया में घूम रही है— यद्यपि इसकी प्रमाणिकता सिद्ध नहीं है कि अब्राहम लिंकन ने ऐसा कोई पत्र लिखा हो, तथापि एक बच्चे के शिक्षण के लिहाज़ से इसमें लिखी बातें विचारणीय हैं।

मैंने अपने पत्र में बहुत कुछ लिखा है, देखें इसमें से क्या करना सम्भव है...।

चलो, वह तो अमेरिकन हुए। गिजू भाई– गुजराती आदमी। गिजू भाई का बाल-दर्शन देख लिया, ज़रा पढ़िए तो–

1– जवाब दीजिए

मैं खेलूँ कहाँ?
मैं कूदूँ कहाँ?
मैं गाऊँ कहाँ?
मैं किसके साथ बात करूँ?
बोलता हूँ, तो माँ को बुरा लगता है।
खेलता हूँ, तो पिता खीजते हैं।
कूदता हूँ, तो बैठ जाने को कहते हैं।
गाता हूँ, तो चुप रहने को कहते हैं।
अब आप ही कहिए कि मैं कहाँ जाऊँ? क्या करूँ?

2– दुश्मन

'सो जा, नहीं तो बाबा पकड़कर ले जाएगा।'
'खा ले, नहीं तो चोर उठाकर ले भागेगा।'
'बाघ आया!'
'बाबा आया!'
'सिपाही आया!'
'चुप रह, नहीं तो कमरे में बन्द कर दूँगी।'
'पढ़ने बैठ नहीं तो पिटाई करूँगी।'
जो इस तरह अपने बालकों को डराते हैं, वे बालकों के दुश्मन हैं।

अब्दुल कलाम की शिक्षकों से अपेक्षाएँ पढ़ लीं–

1- "One of the very important characteristic of a student is to question; let the student ask questions."

2- "The best brains of the nation may be found on the last benches of the classrooms."

कुछ नई सोच रखने वाले शिक्षकों से मिल लिया और कुछ शिक्षाविदों के बारे में सुन लिया। कुछ बाल मनोविज्ञान पर आधारित फ़िल्में (तारे ज़मीन पर, थ्री ईडियट्स आदि) देख लीं। फ़िल्मी बातें थीं साहब, पर अच्छी लगीं : तारे ज़मीन पर का मन्दबुद्धि दर्शील हो या उसका नौटंकी टीचर आमिर ख़ान-अन्दर से झकझोर देते हैं, सोचने के लिए विवश कर देते हैं कि बच्चे जैसे भी हों, उनके लिए शिक्षक का संवेदनशील होना ज़रूरी है। थ्री ईडियट्स तो जैसे गला फाड़-फाड़कर रटन्त शिक्षा प्रणाली को धत्ता बताती है; भला बिना याद करे कोई क्या पढ़ेगा? पर फ़िल्म थी, भाई! रणछोड़ दास चांचड़ ने तो जैसे रट्टू चतुर के छक्के ही छुड़ा डाले थे फ़िल्म में। बहुत बाद में पता चला कि फ़ुन्सुक वांगडू एक वास्तविक किरदार हैं– सोनम वांगचुक, जो लेह जैसी दुरूह जगह पर भी शिक्षा की एक बिलकुल अलग अलख जगाए हैं। बस फिर क्या था, एक क़सम ले ली कि जब भी शिक्षक बनेंगे, नए ढंग का बनेंगे– 'नवाचारी शिक्षक'– ऐसा शिक्षक जो अपने छात्रों को पढ़ाने की बजाय सीखने के अवसर दे, जिसके छात्र उससे खुलकर प्रश्न पूछें; वे तथ्यों को रटने की बजाय उन्हें समझने का प्रयास करें; वह छात्रों को बच्चा समझने की बजाय उन्हें अपना मित्र समझे।

अध्यापन का अवसर मिला; गाँव के बच्चे थे, झिझकते, सहमते, शरमाते। आख़िर यह तो उनकी गुरुभक्ति थी ना-भला गुरु से प्रश्न पूछें, उसकी बातों पर प्रश्न उठाएँ, यह तो उद्दण्ड बालक ही करते हैं ना! पर न जाने क्यों वे सकुचाते बच्चे अच्छे नहीं लग रहे थे। उनसे दोस्ती करने का मन हो रहा था। पहले ही दिन घोषणा कर दी, "मैं तुम्हारा शिक्षक नहीं, तुम्हारा दोस्त हूँ। तुम्हें ग़लतियों पर भी पीटूँगा नहीं। विषय सम्बन्धी कोई भी प्रश्न हो तो बेझिझक पूछ लेना।" कुछ दिनों में ही बच्चों के साथ आत्मीयता बढ़ने लगी, उनकी इच्छा-अनिच्छा पता लगने लगी, उनका प्रेम भी मिलने लगा। बस, प्रण लिया कि मैं अपने शिष्यों को ख़ूब प्रश्न करने के लिए प्रेरित करूँगा। उनसे व्यक्तिगत

संवाद स्थापित करूँगा। प्रण था, तो प्रयास करना पड़ा। शुरुआती दिनों में लगता था कि जिन बच्चों को मैं पढ़ाऊँगा उनके लायक़ तो मेरे पास ज्ञान का भण्डार पूरा है ही, कुछ भी पूछेंगे– किसी तरह उन्हें उत्तर तो दे ही दूँगा।

अब शुरू हुआ मेरा अध्यापन– 'पूछो बच्चो! ख़ूब प्रश्न पूछो! सम्बोध आधारित, सम्बोध से इतर!' पर यह क्या, बच्चे तो प्रश्न पूछ ही नहीं रहे! कहीं इन्हें मेरे गुरुजी होने का डर तो नहीं? चोला बदला, गुरु से बन गया दोस्त। ऐसा दोस्त जिससे ग़ुस्सा करने, रूठने, भयरहित प्रश्न पूछने का उन्हें हक़ था; जिसकी बातों को सुनना सामने वाले दोस्त की मजबूरी नहीं थी। बहुत दिनों बाद कक्षा 10 के बच्चे का प्रश्न आया, "सर,जुड़वाँ बच्चे कैसे पैदा होते हैं?" मैं निरुत्तर। क्या इस सह्कक्षा में मैं यौन विषयों के उत्तर बता सकता हूँ? क्या यह बच्चे उत्तर सुनने को तैयार हैं? क्या मेरा उत्तर पूरी तरह बताने लायक़ है? बच्चे का एक प्रश्न और मेरे कई! ख़ैर, बच्चे को मिली शाबासी और मुझे गृहकार्य। अगले दिन अपने ज्ञान को जाँच-परखकर कक्षा में उत्तर देना पड़ा। उसके बाद तो प्रश्नकर्ता बढ़ने लगे और मैं उनके बीच अकेला पड़ने लगा। एक बच्चे का प्रश्न आया, "सर, क्या पीपल का पेड़ सच में रात को भी ऑक्सीजन देता है?" "क्या-क्या! फिर से पूछिए। अरे, किसने कह दिया, भाई? मैंने तो कभी ऐसा नहीं पढ़ा, यार," मैं (एक ग्रेजुएट शिक्षक) बोल पड़ा। बच्चे ने पूरी निष्ठा के साथ अपना प्रश्न दोहराया और प्रश्न की सच्चाई पर विश्वास दिखाया। अब क्या था, मिल गया गृहकार्य। जिस इण्टरनैट का प्रयोग मैं facebook और अन्य समय बिताऊ मज़ेदार गतिविधियों के लिए करता था, जो मेरा नितान्त व्यक्तिगत मनोरंजन इन्वैस्टमैण्ट था, उसी इण्टरनैट का प्रयोग मुझे आज बच्चे के प्रश्न ढूँढ़ने के लिए करना पड़ रहा था| फिर भी, विश्वास था कि मेरा पूर्वज्ञान जीत ही जाएगा कि पेड़-पौधे केवल दिन के समय ही भोजन निर्माण की क्रिया में ऑक्सीजन बनाते हैं। जब गूगल करके देखा तो पता लगा कि कुछ रेगिस्तानी पौधे और एपिफाइट्स (जो पोषण के लिए दूसरे पौधों पर निर्भर रहते हैं) रात को भी एक विशेष प्रकार की क्रिया द्वारा भोजन बनाते हैं और रात को भी कार्बन डाईऑक्साइड गैस नहीं निकालते। हालाँकि, पीपल के पेड़ को लेकर जानकारी स्पष्ट नहीं थी। मतलब साफ़ था, बच्चों को प्रश्न करने की आज़ादी, अपने आप को अध्ययन करने की सज़ा। आख़िर है ना 'आ बैल मुझे मार' वाली बात।

> नया शिक्षक बनने की धुन ने मुझे कुछ ऐसे अवसर दिलाए जिन्होंने मुझे अवधारणात्मक शिक्षण की गर्त में पूरी तरह धकेलने में कोई क़सर नहीं छोड़ी। ऐसी कई कार्यशालाओं में भी भाग लिया जहाँ पर पुस्तकीय ज्ञान की जाँच करने की भी प्रेरणा दी जाती है। अब बताइए, भला पुस्तकों के ज्ञान को परखना ? क्यों, भाई ? कहाँ वक़्त है एक शिक्षक को कि वह अपना सिलेबस पूरा करा पाए, कहाँ हैं उसके पास इतने संसाधन ?

ख़ैर, प्रण था, भई! इतनी जल्दी हार नहीं मान सकता था। यह सिलसिला चलता रहा। दिन प्रतिदिन नया शिक्षक बनने की धुन अपने अन्दर किसी शराबी की शराब वाली लत की तरह बढ़ती ही गई। बच्चों से दोस्ती ने अब प्रेम का रूप ले लिया। उनसे भावनात्मक जुड़ाव बढ़ता गया। वह मेरे अपने बच्चों की तरह ही मेरी बातों से ख़ुश होते, मेरे ग़ुस्से से नाराज़ हो जाते, रह-रहकर अपने प्रेम, अपने समर्पण का प्रदर्शन करते। मुझे शिक्षक कम, अपना दोस्त ज़्यादा समझते। अब बताइए, क्या यह एक शिक्षक के लिए सही है कि उसके शिष्य उससे दोस्त की तरह व्यवहार करें? उन्हें क्या हक़ है कि वे मेरे अपने बच्चों की तरह मुझसे अपेक्षा रखें? क्या यह मेरी व्यक्तिगत ज़िन्दगी में दख़ल नहीं है?

आगे सुनिए– नया शिक्षक बनने की धुन ने मुझे कुछ ऐसे अवसर दिलाए जिन्होंने मुझे अवधारणात्मक शिक्षण की गर्त में पूरी तरह

धकेलने में कोई क़सर नहीं छोड़ी। ऐसी कई कार्यशालाओं में भी भाग लिया जहाँ पर पुस्तकीय ज्ञान की जाँच करने की भी प्रेरणा दी जाती है। अब बताइए, भला पुस्तकों के ज्ञान को परखना? क्यों, भाई? कहाँ वक़्त है एक शिक्षक को कि वह अपना सिलेबस पूरा करा पाए, कहाँ हैं उसके पास इतने संसाधन? वर्कशॉप में ऐसे भी प्रयोग किए जो आसपास के कबाड़ को जुगाड़ कर पहले से ही तैयार किए हुए होते और लगता है कि यह तो किया जा सकता है। तो क्या अब कबाड़ बीनते रहें हम? अब घर पर भी चैन से नहीं बैठने दोगे? फ़िल्में-सीरियल, ख़बरें न देखें! यही वीडियो ढूँढ़ते रहें?

इन कार्यशालाओं में कुछ ऐसे जुनूनी लोग मिले जो ऐसे ही न जाने कितने कार्य अपने विद्यालयों में कर भी रहे हैं, जैसे कि उन्हें कोई काम-धाम ही न हो। चलो, उनकी भेड़चाल में मैं भी शामिल हो जाता हूँ। अब तो व्हाट्सएप ग्रुप भी बन गया है, जिसमें मेरे जैसे कई और जुनूनी शिक्षक जुड़े हुए हैं। शिक्षकों की एक स्वैच्छिक कार्यशाला के बाद कार्यशाला के कुछ सदस्यों ने जनपद के कर्मठ शिक्षकों को एक मंच पर लाकर खड़ा कर दिया। कई जुनूनी शिक्षक हैं इस 'इनोवेटिव साइंस' ग्रुप में। वे निरन्तर अपने कार्यों को ग्रुप में साझा कर रहे हैं और एक-दूसरे के कार्यों से सीख भी रहे हैं और उनकी सराहना भी कर रहे हैं। पर मैं क्यों उनसे प्रेरित हो रहा हूँ? भला इस सोशल मीडिया की आत्ममुग्धता में किसके पास समय है दूसरे के कार्यों को देखने-सुनने का? और फिर उसकी सराहना भी करो? फिर कौन होगा जो सोशल मीडिया के इस मोहजाल से बच सकेगा? अब अपने कार्यों को साझा करना है तो कार्य तो दिखाना पड़ेगा ना! तो करो अतिरिक्त कार्य। नया कार्य ओवरटाइम मिलेगा क्या?

अब स्वैच्छिक समूह और कार्यशालाओं का हिस्सा बनूँगा तो मित्रों की संख्या में इज़ाफ़ा होना लाज़मी है। पर ऐसे मित्रों का क्या, जो घरेलू ख़ुशख़बर से पहले विद्यालयी गतिविधियों, नई शिक्षण तकनीकों और नए शिक्षण विचारों के बारे में बतियाने लगते हैं। जब देखो तब– "और सुनाइए, क्या चल रहा है आजकल? कुछ लिखा-विखा नहीं क्या? आजकल ग्रुप में भी कुछ साझा नहीं हो रहा? सब ख़ैरियत है ना?" लो जी, इन मित्रों की ही कमी थी! मतलब, अब जो कर रहे हैं उसका लेखा-जोखा भी रखें और उसकी रिपोर्टिंग भी करें। अरे, हम से हमारा डिपार्टमैण्ट कभी हिसाब नहीं माँगता हमारी विद्यालयी गतिविधियों का, और आपको सब कुछ चाहिए! क्या ये हमारी स्वतन्त्रता पर आक्रमण नहीं?

न जाने कौन घड़ी में ऐसी ही एक कार्यशाला में अपनी जून की छुट्टियाँ ख़राब करने चला गया; कार्यशाला का विषय था– 'पढ़ने-लिखने की संस्कृति की ओर'। ऐसे-ऐसे शिक्षक थे, जो शिक्षक कम शिक्षाविद ज़्यादा लगते थे। कितना अध्ययन कर रहे हैं यह लोग? यह अध्ययन ही करते हैं या अध्यापन भी करते हैं? जब यह इतने अधिक ज्ञान-मनोविज्ञान के साथ बच्चों के पास जाते होंगे तो क्या इनका शिक्षण मेरे शिक्षण जितना साधारण रहता होगा? नहीं यार! किसी विषय विशेष में अधिक ज्ञान अधिक सन्तुष्टि भी तो देता है। मतलब शिक्षक ने ठेका ले लिया है जीवनभर पढ़ते रहने का? अन्य कार्यशालाओं की तरह इस कार्यशाला में भी वही बात, बच्चों को प्रश्न निर्माण के लिए प्रेरित करिए। उनके प्रश्नों को सुनिए, उनके हल ढूँढकर उन तक पहुँचाइए। उनके पढ़ने-लिखने के लिए पुस्तकालय खोलिए, किताबें उपलब्ध

अन्य कार्यशालाओं की तरह इस कार्यशाला में भी वही बात, बच्चों को प्रश्न निर्माण के लिए प्रेरित करिए। उनके प्रश्नों को सुनिए, उनके हल ढूँढ़कर उन तक पहुँचाइए। उनके पढ़ने-लिखने के लिए पुस्तकालय खोलिए, किताबें उपलब्ध करवाइए। शिक्षक न हुए Trouble Shooter हो गए। अब ख़रीदो या किसी तरह एकत्र करो उनके लिए किताबें।

करवाइए। शिक्षक न हुए Trouble shooter हो गए। अब ख़रीदो या किसी तरह एकत्र करो उनके लिए किताबें।

अब बच्चों के प्रश्नों को नोट कर रहे हैं और उन्हें ग्रुप में साझा करके ग्रुप डिस्कशन चल रहा है। देवेन्द्र मेवाड़ी जैसे व्यक्तित्व को प्रश्न पूछ-पूछकर परेशान कर रहे हैं। टीएलसी से उनके लिए किताबें ले जाकर पढ़ा रहे हैं, कुछ किताबें इण्टरनैट से डाउनलोड करके कम्प्यूटर में डाल दी हैं। विद्यालय के बच्चे दिन-ब-दिन सिरपर चढ़ते जा रहे हैं। किताबें उन्हें नई-नई चाहिए, सबके लिए किताबें चाहिए। कक्षा में पहुँचो नहीं कि उन्होंने प्रश्नों के गोले दाग़े नहीं— अब तो कक्षा में घुसने में भी डर लगने लगा है।

आज कक्षा में बच्चों को बोला,"अरे सयानों! मेरे वैज्ञानिक दोस्तों! अगर तुम यूँ ही प्रश्न-उत्तर खेलते रहोगे और मैं तुम्हें धातु-अधातु पढ़ाना छोड़कर घर्षण, उत्प्लावन जैसी अवधारणाओं तक ले जाता रहूँगा, तुम्हारा कम्प्यूटरवाला पाठ छोड़ तुम्हें— जुगनू कैसे चमकता है? फल काटने पर भूरे क्यों हो जाते हैं? साबुन का झाग कैसे बनता है? वस्तु पानी पर कैसे तैरती है? आदि-आदि प्रश्नों के उत्तर देता रहूँगा तो मेरे सिलेबस का क्या होगा? तुम्हारी किताब तो आधी भी नहीं पढ़ा पाऊँगा।" कक्षा के बच्चे एक सुर में बोल पड़ते हैं, "सर, उसकी चिन्ता मत करो। किताब तो हम दो-चार दिनों में ही पढ़ लेंगे। हमको विज्ञान समझने में मज़ा आ रहा है।" अब बताइए, इस मासूम जवाब से बच्चे मुझे ब्लैकमेल नहीं कर रहे क्या? और तो और, पिछले साल जिस अमित, जगत और नारायण को मैंने विशिष्ट कक्षा में इसलिए बुलाया कि उन्हें पढ़ना-लिखना नहीं आता, वे ही आज कक्षा में सबसे ज़्यादा प्रश्न करते हैं। वे शुद्ध-अशुद्ध, जिस भी रूप में, अपना गृहकार्य दिखाने को उतावले दिखते हैं। अब उनकी कॉपियाँ भी चेक करो।

> सोचिए, अगर मैं चुपचाप कुर्सी पर बैठकर अपने सिलेबस के पाठों को पाठ्यपुस्तक के सहारे पढ़ा रहा होता तो क्या मेरे पास अपने लिए वक़्त नहीं होता? मज़े से दो-चार घण्टे अपने यारों के साथ देश-दुनिया की चिन्ता कर रहा होता। राजनीति, भ्रष्टाचार, सामाजिक बुराइयाँ— क्या कुछ नहीं था देखने के लिए, पर इस पढ़ने-पढ़ाने से फ़ुर्सत मिले तब ना!

ऐसी ही न जाने कितनी समस्याएँ झेल रहा हूँ मैं। किस वजह से? अजी साहब, उसी धुन की वजह से। बच्चों को प्रश्न पूछने के लिए भड़काने की वजह से। सोचिए, अगर मैं चुपचाप कुर्सी पर बैठकर अपने सिलेबस के पाठों को पाठ्यपुस्तक के सहारे पढ़ा रहा होता तो क्या मेरे पास अपने लिए वक़्त नहीं होता? मज़े से दो-चार घण्टे अपने यारों के साथ देश-दुनिया की चिन्ता कर रहा होता। राजनीति, भ्रष्टाचार, सामाजिक बुराइयाँ— क्या कुछ नहीं था देखने के लिए, पर इस पढ़ने-पढ़ाने से फ़ुर्सत मिले तब ना!

इसलिए कह रहा था, मत करिए यह बेवक़ूफ़ी! रोकिए बच्चों को प्रश्न करने से। यह कई बार आपकी पूर्व अवधारणा को चकनाचूर कर देंगे, आपके ज्ञान को चुनौती देंगे, आपको अतिरिक्त कार्य और अतिरिक्त अध्ययन के लिए प्रेरित करेंगे, आपको समयाभाव की स्थिति में ला देंगे और पृथक कर देंगे आपको एक बड़े पारम्परिक शिक्षक समुदाय से। आपको अपने जैसे और कर्मठ शिक्षकों के समुदाय से जुड़ने को विवश कर देंगे।

और हाँ, अगर फिर भी आप मेरी तरह ही इस दलदल से निकलना नहीं चाहते, तो लीजिए मज़ा : आत्मसन्तुष्टि का, तार्किकता का, खोजपरकता का, ज्ञान के निर्माण का, अनुभवों के संकलन का, सृजनशीलता का, बच्चों के आनन्द का, उनके निश्छल प्रेम का और एक शिक्षक होने का। बन जाइए हिस्सा वर्तमान शिक्षा की वास्तविक ज़रूरत का, बनाइए सीढ़ियाँ शिक्षा के लक्ष्य प्राप्ति की। क्या नई

शिक्षा पद्धति शिक्षकों से यह अपेक्षा नहीं करती कि वे सच्चे मार्गदर्शक बन अपने छात्रों को ज्ञान का सृजन करना सिखाएँ? क्या वह रटन्त प्रणाली की बजाय समझ-आधारित प्रणाली की बात नहीं करती? क्या विज्ञान में स्वयं करके सीखने पर ज़ोर नहीं दिया जाना चाहिए? क्या भाषा केवल विद्यालयी पाठ्यपुस्तक से ही सम्पन्न होगी? क्या गणित केवल किताबों में बसती है? क्या अंग्रेज़ी को निर्धारित पाठ्यपुस्तक में समेट दिया जाना चाहिए? क्या सामाजिक विज्ञान की शुरुआत बच्चे के परिवार, उसके गाँव से नहीं की जा सकती?

यक़ीन मानिए, यह सब करने के बाद आपको गर्व होगा कि आपने भी शिक्षा के मूल उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर अपना पहला क़दम बढ़ा दिया है...।

सुन्दर नौटियाल एक दशक से अध्यापन के क्षेत्र में सक्रिय हैं। वर्तमान में उत्तरकाशी जिले में बतौर विज्ञान शिक्षक कार्यरत हैं।
सम्पर्क : alice.myprince@gmail.com